भारतीय बैंकिंग क्षेत्र के लिए अनुसंधान की अनिवार्यता*

एस. एस. मूंदड़ा

प्रस्तावना

डॉ. जे. महेंदर रेड्डी, उप प्राचार्य, आईसीएफएआई, फाउंडेशन फार हायर एज्यूकेशन (आईएफएचई) युनिवर्सिटी; श्री एस.वी. शेषय्या, निदेशक, आईबीएस, हैदराबाद; गोखले इंस्टीट्यूट आफ पालिटिक्स एंड इकानामिक्स, पुणे और आईबीएस, हैदराबाद के संकाय-सदस्य;अनुसंधान सम्मेलन के प्रतिनिधि गण; देवियो और सज्जनो! मैं गोखले इंस्टीट्यूट ऑफ पालिटिक्स एंड इकानामिक्स, पुणे तथा आईबीएस, हैदराबाद का आभारी हूँ कि उन्होंने आज की सुबह प्रथम बैंकिंग अनुसंधान सम्मेलन में उद्घाटन भाषण देने के लिए मुझे आमंत्रित किया है। ये दोनों देश की महान शैक्षिक संस्थाएं हैं। आईबीएस, हैदराबाद ने बहुत ही कम समय में प्रबंधन शिक्षा और अनुसंधान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, वहीं गोखले इंस्टीट्यूट ऑफ पालिटिक्स एंड इकानामिक्स (जीआईपीई), पुणे देश में अर्थशास्त्र के क्षेत्र में सबसे प्राचीन अनुसंधान और प्रशिक्षण संस्थान रहा है और प्रतिष्ठित आर्थिक अनुसंधान संस्थान बना रहा है। मैं शिक्षा एवं अनुसंधान के क्षेत्र में किए गए उनके प्रयासों के लिए उन्हें बधाई देता हूँ।

2. बैंक, समस्त उभरती अर्थव्यवस्थाओं की वित्तीय प्रणाली के मज़बूत आधार हैं और भारत भी उनमें से अपवाद नहीं है। भारत में बैंक वित्तीय मध्यस्थता की महत्वपूर्ण भूमिका प्रभावी तरीके से निभाते रहे हैं। बैंकिंग प्रणाली और अर्थव्यवस्था दोनों के स्वास्थ्य में परस्पर संबंध है और ऐसे समय में जब विश्व में विकास की गति लड़खड़ा रही है, बैंकिंग प्रणाली को अनेक प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। प्रत्येक चुनौती की उत्पत्ति भिन्न है और संभवतः उनका समाधान भी अलग-अलग है। किंतु, चुनौतियों से अवसर भी पैदा होते हैं। मौजूदा और आसन्न चुनौतियों का सामना करने तथा उभरते हुए अवसरों का लाभ उठाने के लिए यह ज़रूरी है कि यह क्षेत्र अपना पर्याप्त समय एवं संसाधन सार्थक अनुसंधान कार्यों में लगाए। इस स्थिति में, जब बैंकिंग क्षेत्र दोराहे पर खड़ा है, मेरे विचार से इस प्रकार के बैंकिंग अनुसंधान सम्मेलन का आयोजन अत्यधिक सामयिक है। मुझे उम्मीद है कि इस सम्मेलन में की जाने वाली चर्चा बैंकों द्वारा जिन समस्याओं का सामना किया जा रहा है उसके प्रति अंतदृष्टि प्रदान करेगी और अग्रगामी अनुसंधान के लिए सम्मेलन मार्ग प्रशस्त करेगा जो नये विचारों को जन्म देगा जिससे बैंकिंग क्षेत्र की क्षमता तथा प्रभाव में सुधार आएगा।

अनुसंधान महत्त्वपूर्ण क्यों है ?

3. बेन बर्नानके, जो स्वयं अनुसंधानकर्ता एवं प्रैक्टिशनर थे, उनका कहना है कि अनुसंधान उस समस्याओं के बारे में एक दीर्घकालिक नज़रिया प्रदान करता है जिनका हम दैनिक आधार पर सामना करते हैं। किए गए परम अनुसंधान ने जो सिद्धांत विकसित किए हैं वे हमेशा के लिए प्रासंगिक बने हुए हैं। मैं अपनी नीवनतम वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट से एक उदाहरण देना चाहूंगा ''जब वर्तमान विवेक मौजूदा समस्याओं का समाधान प्रस्तुत नहीं कर पाता है तब प्राचीन ज्ञान कई बार सहायक सिद्ध होता है''। उदाहरण के लिए विश्व के वित्तीय संकट ने हमें विवश कर दिया कि हम मिन्स्की की वित्तीय स्थिरता की परिकल्पना पर नज़र डालें जो इस बात का आधार बनी कि गैर-सरकारी क्षेत्र द्वारा कर्ज़ का संचय ही आर्थिक संकट का प्रमुख कारण था। मिन्स्की ने अपनी पुस्तक में तीन प्रकार के उधारकर्ताओं का उल्लेख किया है - 'हेज उधारकर्ता' (वे जो अपने कर्ज़ के दायित्वों को पूरा कर सकते हैं - अपने निवेश से होने वाले नकदी प्रवाह से मूलधन एवं ब्याज दोनों को), 'कल्पनाशील उधारकर्ता' (वे जो अपने कर्ज़ को चुका सकते हैं - किंतु केवल ब्याज चुकाएंगे और मूलधन की राशि को मौजूदा निवेश से आने वाली नकदी से समय-समय पर थोड़ा-थोड़ा चुकाते रहेंगे) और 'पॉन्जी उधारकर्ता' (जिनकी वर्तमान नकदी का प्रवाह कर्ज़ के दायित्व को पूरा करने के लिए अपर्याप्त है लेकिन कर्ज़ इस भरोसे पर लिया गया कि आस्तियों के मूल्य में वृद्धि से उस दायित्व को पूरा

---

* श्री एस.एस. मूंदड़ा, उप गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा जीआईपीई, पुणे एवं आईबीएस, हैदराबाद द्वारा संयुक्त रूप से 29 जनवरी, 2016 को हैदराबाद में आयोजित प्रथम बैंकिंग अनुसंधान सम्मेलन में दिया गया उद्घाटन भाषण। श्रीमती रेखा मिश्रा, श्री संजीव प्रकाश, श्री राधेश्याम वर्मा और सुश्री अन्वेषा दास द्वारा दिए गए सहयोग के प्रति आभार।

कर लिया जाएगा)। पॉन्जी उधारकर्ताओं का वर्चस्व वित्तीय प्रणाली में तब खलबली मचा सकता है जब आस्तियों के मूल्य बढ़ना बंद हो जाएंगे। आईएमएफ और अन्य वित्तीय अनुसंधान घरानों ने उभरते बाज़ार में कारपोरेट घरानों के अत्यधिक कर्ज़दार होने पर शिकायत की है और विश्व की वित्तीय स्थिरता पर इस समय उससे पड़ने वाले प्रभावों पर आशंका प्रकट की है, इसलिए इस स्थिति ने मिन्स्की के 'वित्तीय अस्थिरता परिकल्पना' की प्रासंगिकता की पुनः पुष्टि कर दी है।

4. एक अन्य उदाहरण देखें, आप में से अधिकांश लोग इस बात से परिचित होंगे कि 'कीन्स को पुनः अंगीकार करना' विषय पर निरंतर बहस चल रही है। 'कीन्स की वापसी' मानक के तर्क की आवश्यकता अर्थव्यवस्था को मंदी की खाई से निकालकर उसमें तेजी लाने हेतु राजकोषीय प्रोत्साहन के लिए है। घाटे के बोझ को सरकारी हस्तक्षेप की मुख्य कमी के रूप में नहीं, बल्कि एक आवश्यक उपाय के रूप में देखा गया है ताकि सकल मांग की कमज़ोरी को दूर किया जा सके। यहां यह बताना ज़रूरी है कि यह सिद्धांत पहली बार जॉन मेनार्ड कीन्स द्वारा उनकी पुस्तक द जनरल थियरी ऑफ एम्प्लायमेंट, इंटरेस्ट एंड मनी में प्रस्तुत किया गया था जो महामंदी के दौरान 1936 में प्रकाशित हुई थी। कीन्स ने कहा था 'हम एक समुदाय के रूप में भावी उपभोग की खपत का प्रावधान वित्तीय उपाय से नहीं कर सकते बल्कि केवल भौतिक उत्पादन से कर सकते हैं'। हालांकि कई अर्थशास्त्रियों ने राजकोषीय प्रोत्साहन की कसौटी पर इस विचार का कड़ा विरोध किया है। ब्रिटेन एवं अमरीका में पूरे अटलांटिक क्षेत्र के अर्थशास्त्रियों का सुझाव है कि सरकार द्वारा वर्तमान के योजनाबद्ध बजट घाटा की तुलना में बजट घाटा में तीव्र कमी करने की कार्रवाई संवहनीय सुधार को सहारा प्रदान करने के लिए बेहतर साबित होगी। आप में से कुछ लोगों को यह ज्ञात होगा कि हमारे देश में अर्थशास्त्रियों के साथ सरकार के बजट-पूर्व परामर्श में इस बात पर ज़ोरदार बहस हुई थी कि अर्थव्यवस्था को सहारा प्रदान करने के लिए सरकारी घाटे को बढ़ाया जाए या नहीं। संक्षेप में कहें तो सत्य यह है कि कीन्स के सिद्धांत की प्रासंगिकता बनी हुई है जिसने उसके पहली बार प्रकाशित होने के बाद आठ दशक बीत जाने पर भी उसके समर्थकों एवं कुछ असमर्थक जैसे लोगों की तीव्र प्रतिक्रिया को जन्म दिया है, यह स्वयं में इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने जो अनुसंधान किया था उसकी गुणवत्ता कितनी थी।

5. बैंकिंग क्षेत्र जो स्वयं एक गतिमान क्षेत्र है और देश के आर्थिक भाग्य से निकट से जुड़ा हुआ है उसमें गहन अनुसंधान की आवश्यकता पर अधिक ज़ोर मुश्किल से ही दिया जाता है। इस क्षेत्र की गतिशीलता को देखते हुए बैंकिंग अनुसंधान निरंतर तौर पर किया जाना चाहिए। उभरती हुई प्रवृत्तियों या जोखिमों को नज़रअंदाज़ करना विनाशकारी सिद्ध हो सकता है। विश्व में वित्तीय संकट के घटित हो जाने के बाद एफडीआईसी के भूतपूर्व अध्यक्ष इरविंग स्प्रैग ने कहा था - 'विगत के अनुभवों के बोझ से उन्मुक्त बैंकरों की प्रत्येक पीढ़ी यह समझती है कि वह सबसे अच्छा ज्ञान रखती है, और प्रत्येक नई पीढ़ी कुछ ऐसे लोगों को पैदा करती है, जिन्हें कठोर परिश्रम करके सीखना पड़ता है।'

6. बदलते हुए समय के साथ कदम मिलाकर चलने तथा प्रासंगिक अनुसंधान का निर्माण करने के लिए आज अनुसंधान करने वालों के लिए ज़रूरी है कि वे नये सवाल उठाएं, नई संभावनाओं को तलाशें, पुरानी समस्याओं के संदर्भ में नये दृष्टिकोण से, जिसके लिए सृजनशील कल्पना की आवश्यकता होगी और उससे ही इस क्षेत्र में वास्तविक रूप में उन्नयन हो पाएगा। लेकिन, आज मैं अपने व्याख्यान में पुराने अनुसंधान के विषय जैसे 'आर्थिक वृद्धि पर वृद्ध होती जनसंख्या का प्रभाव' अथवा 'मांगजन्य विकास के मॉडल को क्या चीज परेशान करती है', पर चर्चा करने के बजाय मैं भारतीय बैंकों द्वारा सामना किए जा रहे 'रोजी और रोटी के मुद्दे' पर फोकस करना चाहूँगा, जिसका यह क्षेत्र गहनता से अध्ययन करना चाहेगा।

भा.रि.बैंक/सरकार द्वारा पूर्व में किए गए कतिपय महत्वपूर्ण अनुसंधान कार्य तथा उनके परिणाम

7. जैसाकि आप जानते हैं कि भारतीय रिज़र्व बैंक और सरकार का नीतिगत अनुसंधान करने का एक समृद्ध इतिहास रहा है। नीति उन्मुख अनुसंधान से कई सक्रिय नीतिगत उपाय अंगीकार किए गए हैं जिससे हमारी बैंकिंग प्रणाली को समावेशी तथा विकास उन्मुख बनाने में मदद मिली है। ऋण/बैंकिंग से संबंधित अनुसंधान एवं सर्वेक्षण का एक सबसे पुराना उदाहरण

रिज़र्व बैंक द्वारा 1936 और 1937 में किए गए दो अध्ययन हैं जिसमें यह रेखांकित किया गया था कि किसानों को दिए जाने वाले वित्त पूरी तरह साहूकारों द्वारा दिए जाते थे और ऋण-सहकारिताओं तथा अन्य एजेंसियों की भूमिका नगण्य थी। इसी बात ने रिज़र्व बैंक को उद्यत किया था कि उसने 1935-1950 के दौरान विभिन्न पहल के माध्यम से सहकारिता ऋण आंदोलन को बढ़ावा देने में सक्रिय भूमिका निभाई थी।

8. इसी प्रकार, अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण रिपोर्ट (1954) में यह रेखांकित किया गया था कि कृषि ऋण न केवल मात्रा की दृष्टि से कम था बल्कि गुणवत्ता की दृष्टि से भी उद्देश्य के अनुसार एवं उचित लोगों को नहीं मिलता था। सर्वेक्षण के नतीजे यह थे कि सहकारिता को विकसित किया जाए ताकि कृषि क्षेत्र को विशेष रूप से ऋण प्रदान करने के लिए एजेंसी उपलब्ध हो, साथ ही कमर्शियल बैंकों द्वारा कृषि के विशिष्ट क्षेत्रों में जैसे मार्केटिंग, प्रोसेसिंग तथा भंडारगृहों को ऋण प्रदान करने की भूमिका का उल्लेख किया गया था। इसी प्रकार, रिज़र्व बैंक द्वारा 1966 में गठित अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण समीक्षा समिति (अध्यक्ष : बी. वेंकटअपैय्या) ने अपने अनुसंधान के निष्कर्षों के आधार पर ग्रामीण ऋण प्रदान करने में कमर्शियल बैंकों की बढ़ती हुई भूमिका पर ज़ोर दिया था।

मौजूदा मुद्दे

9. उपर्युक्त उदाहरणों ने सामयिक और प्रभावी अनुसंधान के महत्व को रेखांकित कर दिया है। जैसाकि मैंने ऊपर तर्क दिया है कि इस समय बैंकिंग क्षेत्र में नीति पर अनुसंधान करने की अत्यधिक आवश्यकता है। वैश्विक वित्तीय संकट के बाद आर्थिक मंदी की धीमी बहाली ने बैंकिंग क्षेत्र को बुरी तरह प्रभावित किया है। कुछ मुद्दे जो इस क्षेत्र के लिए चिंता का विषय बने हुए हैं वे हैं - आस्ति गुणवत्ता, पूंजी पर्याप्तता, लाभप्रदता, जोखिम प्रबंधन और गवर्नेंस। इन मुद्दों की चिंता और जोखिम से बचने के कारण बैंकों का कारोबार (जमा और ऋण) लगातार कम होता जा रहा है। यह मंदी बैंकों के 2011-12 के तुलनपत्र में दिखाई दी थी जो 2014-15 तक भी जारी है। बैंकों की आस्तियों पर प्रतिफल (आरओए), विशेष रूप से सरकारी क्षेत्र के बैंकों में, जो वित्तीय संभाव्यता का कॉमन संकेतक होता है, हाल के समय में काफी कमजोर रहा है।

10. यह मानी हुई बात है कि एक प्रतिस्पर्धी, सुदृढ़ तथा समावेशी बैंकिंग प्रणाली भारत जैसी उभरती अर्थव्यवस्था के लिए अपरिहार्य है और जिसे विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी बने रहना है। इसके अलावा, बैंकों को अधिदेश के अनुसार उच्च पूंजी मानक, कड़ाई से चलनिधि और लीवरेज अनुपात बनाए रखना है तथा जोखिम के प्रति अधिक सावधान रहना है। इसका आशय यह है कि बैंकों को अपनी उत्पादकता और कार्यकुशलता को बेहतर बनाने की आवश्यकता है। उन्हें इस बात की भी आवश्यकता है कि वे यह मूल्यांकन करें कि प्रत्येक उत्पाद से उन्हें कितना राजस्व प्राप्त होता है, उनकी सेवा कैसी है और कुशल पूंजी आबंटन के लिए कुशल मूल्य-अंतरण पद्धति उपलब्ध हो।

11. वहीं पर, बैंकों को चाहिए कि वे ऐसे क्षेत्रों की पहचान करें जो अभी तक उनकी सीमा में नहीं लिए गए हैं ताकि उन्हें लाभप्रद कारोबार के अवसर हासिल हो सकें। एक महत्वपूर्ण क्षेत्र जिसकी ओर बैंक बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे हैं वह है पिरामिड के निचले स्तर पर विद्यमान ग्राहक। आप जानते ही हैं कि वित्तीय समावेशन आजकल अत्यधिक प्रचलित शब्द है। जहां हर एक यह समझता है कि इस क्षेत्र में बहुत ज़्यादा संभावनाएं हैं, वहीं यह भी तय है कि यह आसानी से हाथ आने वाला फल नहीं है। यदि बैंक चाहते हैं कि उन्हें वित्तीय समावेशन से निरंतर आधार पर लाभ प्राप्त होता रहे तो उन्हें नई प्रौद्योगिकी लानी होगी और उसका इस्तेमाल करना होगा।

12. एक ओर रेगुलेटरी पहल की जा रही हैं जैसे - अधिक बैंकों को सरकारी व्यवसाय प्रदान करना, नये बैंकों को लाइसेंस प्रदान करना तथा विदेशी बैंक शाखाओं की सहयोगी संस्थाएं खोलना और दूसरी ओर बदलता प्रोफाइल एवं साथ ही ग्राहकों की बढ़ती महत्वाकांक्षाएं तथा उम्मीदें, ये सब मिलकर इस मैदान को और भी प्रतिस्पर्धी बना रहे हैं। इन परिस्थितियों में समर्थनकारी अनुसंधान कार्यों की ज़रूरत है ताकि इष्टतम डिलीवरी मॉडल का पता लगाया जा सके, ग्राहक समूह उत्पाद प्रोफाइल आदि को लक्ष्य किया जा सके जो प्रत्येक बैंक के जोखिम प्रोफाइल के अनुकूल हो, इसपर बड़ी मुश्किल से बल दिया जा रहा है। बैंकों के लिए ज़रूरत है कि

वे अपने आस-पास के वातावरण के प्रति भी जागरूक रहें। देश में जनांकिकी स्वरूप में, साक्षरता स्तर में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं जिससे उपभोक्ता का व्यवहार भी बदल रहा है। इस संबंध में ग्रामीण-शहरी का अंतर करना ज़रूरी है क्योंकि ये चीजें उपभोक्ता की पसंद को प्रभावित करती हैं। बैंकों को लगातार उपभोक्ताओं की पसंद में होने वाले परिवर्तन के बारे में सक्रिय रहना होगा, ऐसे में अनुसंधान की खुशामद अपेक्षित हो जाती है।

13. अब मैं 'रोज़ी और रोटी' के कुछ क्षेत्रों के बारे में बात करूंगा जिनके बारे में मेरे हिसाब से अभी तक अनुसंधान कम हुआ है। अन्य बातों के साथ-साथ इसमें शामिल हैं - कृषि क्षेत्र को ऋण, एमएसएमई और निजी क्षेत्र लीवरेज। इन क्षेत्रों को प्रदान किए गए बैंक-वित्त की प्रवृत्तियों के विश्लेषण से पता चलता है कि इन क्षेत्रों में अनेक प्रश्न ऐसे हैं जिनपर अनुसंधान करने की ज़रूरत है। मैं उनमें से कुछ प्रश्नों पर विस्तार से बात करूंगा।

कृषि

14. 2000 के दशक से लेकर कृषि क्षेत्र को दिए जाने वाले ऋण के चरित्र में महत्वपूर्ण बदलाव आया है। कृषि ऋण के बारे में आम धारणा यह है कि यह तो ग्रामीण क्षेत्र के लिए है और देश में छोटी जोत के पुराने वर्चस्व को देखते हुए कृषि क्षेत्र को दिए गए ऋण में छोटे-छोटे ऋण का हिस्सा सबसे ज़्यादा है। यह भी उम्मीद की जाती है कि फसल ऋण तथा निवेश ऋण दोनों के लिए प्रदान किए गए ऋणों का एक उचित अनुपात है। लेकिन जब इनसे संबंधित डाटा का विश्लेषण किया जाता है, जो किसी भी सार्थक अनुसंधान का पहला कार्य होता है, तो अधिकांश धारणाएं गलत साबित हो जाती है। मैं हाल के समय में कृषि ऋण की कुछ खास विशेषताएं प्रस्तुत करूंगा जो पूरी तरह से चलन में है और जो इस क्षेत्र में अनुसंधान की आवश्यकता को रेखांकित करेंगी।

15. नवीनतम अखिल भारतीय ऋण और निवेश सर्वेक्षण के अनुसार खेतिहर गृहस्थ का औपचारिक स्रोतों से कर्ज का अनुपात लगभग 64 प्रतिशत है जबकि अनौपचारिक स्रोतों से कर्ज का अनुपात 36 प्रतिशत है। इसके अलावा, औपचारिक स्रोतों से लिए गए कर्ज का 1991 में अनुपात 66.03 प्रतिशत था जो घटकर 2013 में 64 प्रतिशत हो गया। इन आंकड़ों से इस बात की गहन दृष्टि मिलती है कि खेतिहर गृहस्थों की ऋण की वर्तमान मांग पूरी नहीं होती है, जिसे अनौपचारिक स्रोतों से पूरा करने के सुबूत मौजूद हैं। दूसरी ओर, मार्च 2015 में भारतीय रिज़र्व बैंक आंतरिक कार्यदल[1] का गठन किया गया था कि वह वर्तमान प्राथमिकता क्षेत्र उधार के दिशानिर्देशों का पुनः जायज़ा ले, क्योंकि कमर्शियल बैंक कृषि क्षेत्र को सभी किंतु 2001 से 2014 के बीच तीन वर्षों में लक्ष्य का स्तर (18 प्रतिशत) प्राप्त करने में नाकाम रहे थे। इस प्रकार इस क्षेत्र में दो विपरीत प्रवृत्तियां पाई गईं । एक ओर किसानों की ऋण की मांग पूरी न होना और दूसरी ओर बैंकों के उधार लक्ष्य से कम रह जाना, बावजूद इसके कि कृषि क्षेत्र को बैंक उधार हेतु निर्दिष्ट प्राथमिकता क्षेत्रों में से एक क्षेत्र निर्धारित किया गया है।

16. कृषि ऋण, जैसे भारत में समग्र बैंक ऋण परंपरागत रूप से देश के दक्षिणी और उत्तरी क्षेत्र में केंद्रित थे। वर्ष 2012 में दक्षिणी और उत्तरी क्षेत्र को मिलाकर लगभग 62 प्रतिशत कृषि ऋण मिलता था जिसमें से अकेले दक्षिणी क्षेत्र को कुल कृषि ऋण का 41 प्रतिशत प्राप्त होता था। इसके अतिरिक्त, कृषि ऋण का जमाव कुछ जिलों में ही रहता था। वर्ष 2012 में 15 जिलों को कुल कृषि ऋण का लगभग 21 प्रतिशत प्राप्त होता था। इस प्रकार से ऋण के केंद्रित होने की स्थिति की थोड़ी और व्याख्या किए जाने की आवश्यकता है।

17. छोटे और सीमांत खेतिहर (जिनकी जोत 5 एकड़ जमीन से कम है) का कृषि-ऋण में हिस्सा और भी कम होता गया है। छोटे और सीमांत किसानों का हिस्सा 50 प्रतिशत से भी कम था बावजूद इस तथ्य के कि भारत के कुल खेतिहर में वे 80 प्रतिशत से अधिक हैं। इसी प्रकार, यह भी पाया गया कि कुल कृषि ऋण में दीर्घकालिक ऋण का हिस्सा लगातार घटता रहा है जो 1990-91 के 74 प्रतिशत से घटकर 2013-14 में 32 प्रतिशत तक पहुंच गया है, जिससे पता चलता है कि कृषि क्षेत्र में पूंजी निर्माण को नज़रअंदाज किया गया है।

[1] भारतीय रिज़र्व बैंक (2015), 'वर्तमान प्राथमिकता क्षेत्र उधार संबंधी दिशानिर्देशों की पुनः समीक्षा हेतु आंतरिक कार्यदल की रिपोर्ट', 2 मार्च।

18. कृषि क्षेत्र में पाए गए कुछ अन्य पैटर्न भी इस प्रकार हैं :

- खेती योग्य ज़मीन की धारिता का औसत आकार घटकर 1.15 हेक्टेअर हो गया है जो चार दशक पहले लगभग 2 हेक्टेअर था। दूसरी तरह से देखें तो यह आकार थाइलैंड की तुलना में उसका 1/10 भाग है और इंडोनेशिया का लगभग आधा है जबकि अमरीका में औसत खेती का आकार 170 हेक्टअर है।
- 1 हेक्टेअर से कम ज़मीन में काम करने वाले परिवार खेती से इतर माध्यम से कमाई को मिलाकर भी बचत न कर पाने वाले परिवार हैं।
- बड़े किसानों (10 हेक्टेअर से अधिक ज़मीन वाले) का 80 प्रतिशत उधार संस्थागत स्रोतों से आता है जबकि भूमिहीन किसानों को उधार केवल 15 प्रतिशत है।

19. की गई चर्चा में से अनुसंधान के लिए जो प्रमुख क्षेत्र उभरकर सामने आए हैं वे इस प्रकार हैं :

- क्या कृषि क्षेत्र/उससे संबद्ध गतिविधियों में बढ़ते हुए कृषि ऋण एवं उत्पादकता में कोई प्रत्यक्ष अंतर-संबद्धता है?
- क्या कृषि क्षेत्र पर प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के रूप में फोकस किये जाने से कृषि क्षेत्र में निवेश - प्रोत्साहन प्रभावी रहा है? क्या बड़े किसानों की तुलना में छोटे किसान भी लाभान्वित हुए हैं?
- क्या किसानों की आय यदि वास्तविकता में नहीं बढ़ी है तो क्या सहज स्तर तक बढ़ी है?
- ग्रामों में कृषि कार्यों की तुलना में कृषि से इतर कामों से अधिक आय प्राप्त होती है तो फिर लोग अभी भी कृषि का कार्य करने में क्यों लगे हुए हैं? क्या कृषि क्षेत्र द्वारा जीडीपी में 18 प्रतिशत तक के योगदान से वह 47 प्रतिशत तक के कार्यबल को अपने पास रोक पाएगा?
- भूमि के बंट जाने से कृषि की उत्पादकता पर उसका क्या प्रभाव पड़ा है? भूमि के बंटवारे के बाद क्या किसान ऋण चुकाने की क्षमता रखता है?
- किसानों को ऋण प्रदान करने की प्रणाली को और भी कुशल बनाने के लिए, विशेष रूप से कम से कम समय में ऋण प्रदान करने के संदर्भ में क्या किए जाने की आवश्यकता है?

सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग (एमएसएमई)

20. भारतीय अर्थव्यवस्था में एमएसएमई की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस उद्योग में बड़ी संख्या में अशिक्षित एवं अर्ध-शिक्षित लोगों को रोजगार मुहैया कराया जाता है तथा बड़े उद्योगों को कच्चे माल, छोटे-मोटे सामान, बने-बनाए पुर्जे तथा संघटक की आपूर्ति की जाती है। एक आकलन के अनुसार देश में 49 मिलियन एमएसएमई हैं जो 111 मिलियन लोगों को रोजगार उपलब्ध कराते हैं जो कृषि क्षेत्र के बाद रोजगार उपलब्ध कराने का सबसे बड़ा क्षेत्र है। मैनुफैक्चरिंग उत्पादन में इस क्षेत्र का हिस्सा 45 प्रतिशत है और देश के कुल निर्यात में इसका योगदान तकरीबन 40 प्रतिशत है। इसके अलावा, लगभग 55 प्रतिशत एमएसएमई ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित हैं जो ग्रामीण विकास एवं समावेशी संवृद्धि को अत्यधिक बल प्रदान कर रहे हैं।

21. एमएसएमई क्षेत्र का जीडीपी में भारी योगदान होने के बावजूद प्रायः उस क्षेत्र की यह शिकायत रही है कि उन्हें संस्थागत स्रोतों से वित्त प्राप्त होने का अभाव है। एमएसएमई क्षेत्र की चौथी गणना (2006-07) से ज्ञात होता है कि केवल 5 प्रतिशत इकाइयों ने संस्थागत स्रोतों के माध्यम से वित्त प्राप्त किया था। मार्च 2015 तक अनुसूचित वाणिज्य बैंकों द्वारा कुल खाद्येतर ऋण में एमएसएमई को दिया गया ऋण केवल 8.4 प्रतिशत था जिसकी तुलना में ऋण का यह प्रतिशत मार्च 2010 में 11.0 प्रतिशत था। यह स्थिति तब की है जब बैंक की बहियों में बड़े कारपोरेट्स को उक्त अवधि में दिए गए उधार काफी दबाव में थे।

22. यह बात शिद्दत से महसूस की जा रही है कि यदि देश को विकास के उच्च पथ पर जाना है तो उसके लिए एमएसएमई क्षेत्र को केंद्रीय भूमिका निभानी होगी। हाल के वर्षों में सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक दोनों ने इस क्षेत्र द्वारा उठाई जा रही कठिनाइयों को आसान बनाने के लिए अत्यधिक प्रयास किए हैं। जहां भारत सरकार ने समस्त सुक्ष्म-वित्त संस्थाओं (एमएफआई) जो मैनुफैक्चरिंग का कार्य कर रही सुक्ष्म और लघु कारोबार की इकाइयों को उधार देने का कारोबार

कर रहीं हैं, के विकास एवं वित्तपोषण के लिए सूक्ष्म इकाई विकास और पुनर्वित्त एजेंसी लिमिटेड (मुद्रा-एमयूडीआरए) की स्थापना की है, वहीं भारतीय रिज़र्व बैंक ने सूक्ष्म उद्यमों के लिए निवल बैंक ऋण का लक्ष्य 7.5 प्रतिशत निर्धारित किया है जिसे चरणबद्ध रूप से प्राप्त किया जाएगा। इसके अतिरिक्त, मध्यम उद्यमों[2] को भी प्राथमिकता क्षेत्र के ऋण की परिधि में लाया गया है। एमएसएमई क्षेत्र में चलनिधि की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा इलेक्ट्रॉनिक व्यापार प्राप्य भुनाई प्रणाली (टीआरडीएस) की स्थापना की जा रही है ताकि प्राप्यों की वसूली तेजी से की जा सके। भारतीय रिज़र्व बैंक ने एमएसएमई उधारकर्ताओं की वित्तीय एवं अन्य जीवन चक्र की आवश्यकताओं के बारे में बैंक स्टाफ को संवेदी बनाने की दृष्टि से एमएसएमई वित्तपोषण हेतु बैंकरों की क्षमता-निर्माण का राष्ट्रीय अभियान (नामकैब्स) की भी भारतीय रिज़र्व बैंक ने शुरूआत की है। जहां तक प्राधिकारियों द्वारा उठाए गए कदम प्रशंसनीय हैं वहीं, एक बुनियादी सवाल यह है कि क्या जो उपचारात्मक उपाय किए गए हैं वे उचित लक्षणों पर आधारित हैं?

23. इस परिदृश्य में, एमएसएमई संबंधी अनुसंधान में निम्नलिखित बिंदुओं पर फोकस किया जा सकता है:

- एमएसएमई क्षेत्र में रुग्णता/तीव्र समापन के कारण और किस हद तक बैंक द्वारा ऋण स्वीकृत करने में विलंब इसका जिम्मेदार है?
- एमएसएमई की जीवन-चक्रीय आवश्यकता क्या है ? एमएसएमई के लिए उपयुक्त डिलीवरी मॉडल क्या है ?
- जिस प्रकार से बड़े कारपोरेट्स के लिए नियम आधारित निर्धारण लागू हैं उसकी तुलना में क्या एमएसएमई उधारकर्ताओं के लिए विभेदीकृत प्रूडेंशियल मानदंड लागू करने का मामला बनता है?

कारपोरेट क्षेत्र लीवरेज

24. वर्तमान में कारपोरेट क्षेत्र का लीवरेज अर्थव्यवस्था के लिए सामान्य तौर पर और बैंकिंग क्षेत्र के लिए खास तौर पर अत्यधिक चिंता का विषय बन गया है। संकट से पहले तथा संकट के बाद भी, कुछ भारतीय कारपोरेट घरानों ने अवहनीय कर्ज की रकम विभिन्न स्रोतों जैसे बैंक-वित्त तथा विदेश से उधार लेकर जुटाई थी। अब हम यह नोटिस कर रहे हैं कि अनेक गैर-पक्षपातपूर्ण कारपोरेट घराने अपना बाज़ार में हिस्सा बढ़ाने तथा अपनी क्षमता का विस्तार करने के लिए विश्व स्तर पर तथा घरेलू स्तर पर मांग की स्थिति को ध्यान में रखे बिना लगातार बाज़ार से उधार लेते जा रहे हैं। सच तो यह है कि कारपोरेट क्षेत्र की बिक्री वृद्धि की दर, विशेष रूप से सूचीबद्ध मैनुफैक्चरिंग कंपनियों की 2010-11 की पहली तिमाही की 28.8 प्रतिशत से घटकर 2012-13 की दूसरी तिमाही में 11.4 प्रतिशत हो गई, वह भी ऐसे समय में जब मुद्रास्फीति (सीपीआई-आईडब्लू) औसतन[3] लगभग 10 प्रतिशत हो गई थी। उनमें से कुछ उधारकर्ता निश्चित रूप से ऐसी श्रेणी में चले गए थे जिसे मिन्सकी 'पांजी उधारकर्ता' का नाम देते हैं, जिसके बारे में मैंने पहले उल्लेख किया था। जहां अत्यधिक लीवरेज्ड कारपोरेट समूहों को लगातार उधार देने के लिए कुछ हदतक बैंकिंग प्रणाली जिम्मेदार है वहीं इन कारपोरेट घरानों ने मिलकर वित्त हासिल करने के लिए भूलभुलैया जैसा रास्ता अपनाया और कंपनियों को समूह बनाया या फिर विशेष प्रयोजन साधन (एसपीवी) के माध्यम से वित्त प्राप्त किया। इस प्रकार की गैर-पक्षपातपूर्ण उधारी की निश्चित गिरावट से उनकी कर्ज चुकाने की क्षमता कमजोर हो गई, इसके अलावा इससे बैंकों के तुलनपत्रों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। उच्च कारपोरेट लीवरेज का एक अप्रत्यक्ष परिणाम यह भी हो सकता है कि मौद्रिक नीति के प्रभावों का उनपर असर बहुत कम हो और कारपोरेट उनके पहले से बहुत ज़्यादा कर्ज के कारण कम होती हुई ब्याज दरों का लाभ उठाने की स्थिति में न हों।

25. इस परिदृश्य में, ऐसे बहुत से क्षेत्र हैं जिनको अनुसंधान के ज़रिये विस्तार से देखने की ज़रूरत है। लीवरेज का विभाजन अत्यावश्यक है। भारत में कुल कारपोरेट ऋण का लगभग तिहाई हिस्सा ऐसी कंपनियों के स्वामित्व में है जिनका ऋण-इक्विटी अनुपात उससे अधिक है। कर्ज के जमाव की स्थिति को देखते हुए यह आवश्यक है कि होल्डिंग कंपनियों और विशेष प्रयोजन

[2] इस प्रकार की सेवाएं प्रदान कर रहे या दिलवा रहे सूक्ष्म और लघु उद्यमों के लिए ऋण सीमा 50 मिलियन रुपये तथा मध्यम उद्यमों के लिए ऋण सीमा100 मिलियन रुपये है।

[3] अप्रैल-जनवरी 2012-13 का औसत

साधन के अनेकों स्तरों की संरचना से जुड़े जोखिमों का मूल्यांकन किया जाए। इसके अलावा, जहां कारपोरेट में लाभ होने के लिए अर्थव्यवस्था में बहाली आने का इंतज़ार रहता है, वहीं पर ऐसे भी उदाहरण हैं जहां कंपनियां अपने कर्ज के दायित्व को पूरा करने के लिए कई तरीके अपनाती हैं जिनमें से एक तरीका स्वयं को लीवरेज न करना है। बहुत सी कंपनियां लीवरेज नहीं कर रही हैं - आस्तियों को बेचकर कर्ज अदा कर रही हैं, इसलिए ताकि बैंक उनके अशोध्य कर्ज की पुनर्रचना न करें। यहां यह जानना महत्वपूर्ण है कि इस प्रकार के तरीकों का प्रभाव कितना है, और ऐसे तरीकों से अर्थव्यवस्था की वृद्धि पर कितनी लागत आती है।

26. जहां ऐसे उधारकर्ताओं को बदनाम करना आसान है जो उधारदाता को कर्ज की चुकौती नहीं कर पाते हैं, किंतु यह कहना अनुचित होगा कि सभी अत्यधिक लीवरेज्ड उधारकर्ता 'पांजी उधारकर्ता' हैं। ऐसे अर्थोपाय तलाश करने की ज़रूरत है जो सही और कपटी उधारकर्ताओं के बीच अंतर कर सके। हमारे अनुभव बताते हैं कि इनमें से अनेक उधारकर्ताओं ने इन्फ्रास्ट्रक्चर परियोजनाएं लगाने के लिए बहुत ज़्यादा रक़म उधार ली जो बाहरी कारकों की वजह से खड़ी हो पाईं। अनेक परियोजनाओं को निर्धारित समय से अधिक समय लग गया, उनकी लागत पूर्व निर्धारित लागत से अधिक हो गई क्योंकि परियोजना के लिए कई प्रकार की अनुमति मिलने में विलंब हुआ, कोयला अथवा गैस से जुड़ाव निरस्त हो गए, पर्यावरणविदों द्वारा किए गए विरोध आदि। यह हम सभी के हित में है कि जो उत्पादन क्षमता सृजित की गई थीं, उसे जोखिम में नहीं डाला गया तथा उससे भविष्य के मार्गदर्शन के लिए सही सबक़ लिए गए। अतः यह महत्वपूर्ण है कि इस प्रकार संस्थापित 3-4 परियोजनाओं के बारे में सार्थक अनुसंधान किया जाए, परियोजना के आधार से लेकर उसके विकसित होने तक की एक-एक बात का बारीकी से विश्लेषण किया जाए, साथ में यह भी पता लगाया जाए कि वित्त प्राप्त करने के लिए किन साधनों एवं संरचनाओं का उपभोग किया गया, प्रवर्तकों द्वारा उनमें कितनी और किस गुणवत्ता की इक्विटी लाई गई थी, विभिन्न परियोजनाओं में उसके बाद का विकास-क्रम क्या था, अंतिम परिणाम क्या था आदि-आदि और उसे न केवल प्रबंधन संस्थानों में संदर्भ के लिए अध्ययन-सामग्री के रूप में बनाया जाए बल्कि सरकारी मशीनरी, रेगुलेटर्स आदि सहित समस्त हितधारकों के संदर्भ के लिए बनाया जाए।

समापन

27. मैंने संक्षेप में कुछ बुनियादी मुद्दों का उल्लेख किया है जिनपर अनुसंधानकर्ताओं को ध्यान देने की आवश्यकता है। यह बातें संकेतात्मक स्वरूप की हैं और इसका संबंध उन प्रमुख क्षेत्रों से है जिनसे बैंक रोजमर्रा के कार्यों में प्रतिदिन रुबरू होते हैं। मैंने जिन मुद्दों की मैंने ऊपर व्याख्या की है, उसके अलावा, यहां उपस्थित कुछ अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन का फोकस इन बातों पर भी कर सकते हैं - क्रेडिट गारंटी योजनाओं और ब्याज दर सब्सिडी का अंतिम उपभोक्ता एवं बिचौलियों पर क्या व्यवहारगत प्रभाव पड़ता है। एक-दो और भी ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें मैं गुणवत्तापूर्ण अनुसंधान देखना चाहता हूँ वे यह हैं कि क्या वित्तीय समावेशन के प्रयास बचत उन्मुख हों या ऋण उन्मुख हों, और क्या इन समस्त मुद्दों का केंद्र शिक्षा ऋण है। अनुसंधान का एक क्षेत्र यह भी हो सकता है कि ग्रामीण शाखाओं में अधिकारियों की तैनाती के संबंध में सरकारी क्षेत्र के बैंकों की नीति क्या है, क्योंकि मेरा विचार है कि इस पहलू का कृषि क्षेत्र की प्रगति एवं ग्रामीण क्षेत्रों में एमएसएमई को दिए जाने वाले ऋण पर महत्वपूर्ण प्रभाव है।

28. जहां मैंने अनुसंधान के अनेक विषयों के बारे में बात कर ली है, वहीं कुछ मुद्दे अनुसंधान पद्धतियों को लेकर हैं। सबसे पहला और महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि क्या पर्याप्त और भरोसेमंद डाटा उपलब्ध है। प्रायः यहां तक कि रिज़र्व बैंक के भीतर भी हमें बेमेल, असंगत तथा अधूरे डाटा-सेट प्राप्त होते हैं जिससे नीति बनाने में अत्यधिक कठिनाई होती है। डाटा डिजाइन और डाटा-संरचना से जुड़ी समस्याएं भी है जैसे - विभिन्न प्रकार की परिभाषाएं, विभिन्न रिपोर्टिंग तारीखें आदि। अनुसंधान की गुणवत्ता इस बात पर भी निर्भर करती है कि सर्वेक्षण का क्या तरीका अपनाया गया है, प्रयोग किए गए नमूनों की पर्याप्तता आदि। इन मुद्दों के समाधान के लिए क्या उपाय किए जाने चाहिए?

29. अपनी बात समाप्त करने से पहले मैं एक बार पुनः आयोजकों को धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने मुझे पहली बार आयोजित बैंकिंग

अनुसंधान सम्मेलन में आमंत्रित किया। अपने संबोधन के दौरान मैंने जो मुद्दे आज उठाए हैं वे अंतिम नहीं हैं और मुझे विश्वास है कि ऐसे अनेक दिलचस्प अनुसंधान के विचार हमारे अनुसंधानकर्ताओं का ध्यान आकर्षित करेंगे। मुझे उम्मीद है कि आने वाले दिनों में बैंकिंग के क्षेत्र में कतिपय गुणवत्तापूर्ण विश्लेषण पर अनुसंधान देखने को मिलेंगे।

मैं, सम्मेलन की सफलता की कामना करता हूँ और आशा करता हूँ कि यहां गंभीर विचार-विमर्श होंगे और उनमें गहनता होगी।

संदर्भ :

1. भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति संबंधी रिपोर्ट 2014-15 तथा वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट 2015 (भारतीय रिज़र्व बैंक)
2. रि-एब्रेसिंग कीन्स स्कालर्स, प्रशंसक और संकट के बाद सेप्टिक्स (मारिया क्रिस्टीना मारमूज़ो)
3. ग्रामीण भारत : आईआईएफएल संस्थागत इक्विटीज की रिपोर्ट